M.A.(Education),part-II,paper-X,
Presented by Dr.Pallavi
Topic- संस्कृति और पर्यावरण (Tradition and Environment)

हम मानव सभ्यता का अध्ययन करें, तो पाते हैं कि पर्यावरण द्वारा दिए गए सम्भावनाओ में ही सामंजस्य बैठकर मानव ने अबतक विकास किया है ।

2.1 भारतीय संस्कृति और पर्यावरण (Indian Tradition and Environment)

समस्त भारतीय साहित्य यथा वेद, उपनिषद्, पुराण,ब्राह्मण, आरण्यक और अलिखित परम्परा ; जैसे प्रकृति पूजा और जीव प्रेम का संदेश ही नहीं देते हैं, बल्कि इस संदेश को जन-जीवन का अभिन्न अंग बनाने वाली परम्पराओं का भी दिग्दर्शन करते हैं ।

ऋग वेद प्रकृति पूजा के अनुष्ठानों का विश्व में प्राचीनतम ग्रन्थ है। मत्स्य पुराण, बाराह पुराण, पद्म पुराण मनुष्य और प्रकृति के सहोदर भावों को अनुष्ठान के रूप में स्थापित करते है। मत्स्य पुराण में कहा गया है-

"दस कूप समावापी, दशवापी-समोहदः। दस-हदः पुत्र समो द्रुमाः॥"

अर्थात दस कुओं के बराबर एक बाबड़ी है, दस बावड़ी के समान एक तालाब है, दस तालाबों समान एक पुत्र है और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष है। सदियों पहले जल संचय के साधनों और वृक्षों को पुत्रों से भी अधिक महत्ता देने की यह दुर्लभ परम्परा आज भी उतनी ही सार्थक है। मानिनी विलास नामक पौराणिक ग्रन्थ में वृक्ष-वंदना को निम्न श्लोक में पिरोया गया है

"धन्ते परं कुसुम पत्र फलावलीनां धर्मव्यथां वहति शीतभवा रुजश्य।
यो देहापर्णति चानसुखस्य हेतो स्तस्मै वदान्य गुरवे तरवे नमोऽस्तु |।

अर्थात जो वृक्ष, फूल-पत्ते व फलों के बोझ से ऊष्ण हुए धूप की तपन और शीत की पीड़ा सहन करता है तथा पर-सुख के लिये अपना शरीर अर्पित कर देता है, उस वन्दनीय श्रेष्ठ को नमन। फल-फूल से लदे वृक्ष हो नहीं, सपन हरे-भरे वृक्ष भी वन्दनीय रहे हैं और इन्हें काटना या प्रदूषित करना नर-वध के समान अपराध माना गया है। इन वृक्षों को ईश्वर का आवास या किसी न किसी देवता के नाम से सम्बद्ध किया गया हैं, ताकि ये पवित्र, पूज्य व सुरक्षित बने रहें।

नरसिंह पुराण में 'वृक्ष-ब्रहम' की संकल्पना है, अर्थात् वृक्ष ईश्वर के समकक्ष माना गया है । अथर्ववेद में पीपल के वृक्ष की आध्यात्मिक महत्ता विवेचित की गई है। विभिन्न देवी-देवों से वृक्षों को जोड़ कर पूम्यनीय मानाः गया हैं, उदाहरणार्थ

वृक्ष का नाम उस वृक्ष से सम्बद्ध आस्था अशोक वृक्ष : भगवान बुद्ध, इन्द्र, भगवान विष्णु, लक्ष्मी व सूर्य, शुभ कार्यों में आवश्यक। तुलसी : सभी प्रकार का भोग या प्रसाद तुलसी पत्र के साथ ही भगवान को अर्पित करना, प्रत्येक आंगन में तुलसी और उसकी पूजा-अर्थना, जल तर्पण आदि शास्त्र सम्मत। कदम्ब वृक्ष : भगवान कृष्ण का प्रिय निवास।

बील वृक्ष : भगवान शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सूर्य का प्रिय वृक्ष ।
वट वृक्ष : ब्रहमा,विष्णु, महेश, कुबेर का वास,भगवान बुद्ध का समाधि-स्थल ।
पीपल वृक्ष : भगवान विष्णु, लक्ष्मी व सूर्य का वास, पूजनीय वृक्ष ।
नीम वृक्ष : नीम को घर के आंगन में रोपना, जन्म के कक्ष में नीम की डाली लगाना व मृत्यु के समय नीम तर्पण शास्त्रोवंत परम्परा ।

भारतीय आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा पूर्णतः प्रकृति जन्य जड़ी-बूटियों और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है। वृक्ष पर्ण, फल, पुष्प, दूध, दही, दूर्वा, वृक्ष-छाल व शहद का प्रत्येक शुभ और आध्यात्मिक अनुष्ठान में महत्व हैं।

इस प्रकार वृक्षों को पूज्य स्थान देकर उन्हें पोषित करना और जीवन के कार्यकलापों में उनका अभिन्न स्थान सुनिश्चित करना स्थाई पर्यावरण संरक्षण की परम्परा का आधार है। वृक्षों को किसी प्रकार का आधात पहुंचाना, उन्हें मल-मूत्र से प्रदूषित करना आदि सर्वथा वर्जित है। इस संस्कृति की मान्यता है-'वृक्षो रक्षति रक्षते', अर्थात् यदि वृक्ष की रक्षा करेंगे, तो वृक्ष हमारी रक्षा करेगा।

2.2 सामाजिक वानिकी (Social Forestry) वृक्षों को जीवन से जोड़ने के साथ-साथ इस देश में वनों के विस्तार व वृक्षारोपण की परम्परा भी आदि काल से रही है। मत्स्य पुराण और पद्म पुराणों में वृहद रूप से वृक्षारोपण कार्यक्रमों के प्रसंग दिये गये हैं। इनमें विशालवृक्ष-महोत्सव कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण उल्लेखित है। मय ऋषि ने ग्राम तथा नगर में वृक्षों की सूची देते हुए अनुशंसा की है कि बील, नीम, बहेड़ा, आम, छितीवन जैसे वृक्ष लगावें।
विल्वो निम्बश्च निर्गुण्डी, पिण्डतः सप्त पर्णकः। सहकाटश्च षड़वृक्षैराऊड़ा या समस्थला ॥
इस प्रकार ,सामाजिक वानिकी की सुदृढ़ परम्परा रही है।

2.3 प्रकृति, जीव-जन्तु और मानव (Nature, Animals and Human being)

भारतीय परम्परा में जीव-जन्तुओं तक में आध्यात्मिक आत्मा का विस्तार स्वीकार किया गया है। इसी कारण अहिंसा का मूल्य सर्वोपरि माना गया है जीव मात्र से प्रेम अहिंसा का आधार है। आखेट या पशु वध को नियम व आचार संहिताओं से जोड़ा गया है। निर्बाध पशु वध, गर्भिणी का वध, योन-रत पशु-पक्षियों का वध वर्जित था। वृक्षों की हो भाँति पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं को आध्यात्मिक व्रत-त्योहार, सांस्कृतिक उत्सवों और देवी-देवताओं से जोडकर मनुष्य की लालची प्रवृत्ति को नियंत्रित करने वाली परम्पराओं को स्थापित किया गया ।वृक्षों की ही भाँति अनेक पशु-पक्षियों को देवी-देवताओं से संबंध करते हुए पूज्यनीय माना गया। उदाहरणार्थ

पशु-पक्षी	सम्बद्ध देव-देवी या परम्परा चूहा	बुद्धि देव श्री गणेश
सिंह	शक्ति रूप माँ दुर्गा	
गाय	गौ पालक भगवान कृष्ण	
बैल व सर्प	प्रकृति कल्याणक भगवान शिव	
हंस	विद्यार्थी मॉ सरस्वती	
कपि	पवन पुत्र हनुमान	
मयूर	कार्तिकेय	
हाथी	लक्ष्मी	

यही नहीं विष्णु के दस अवतारों की गाथा जीव- जन्तुओं के विकास की गाथा है (जैसे मत्स्यावतार, नरसिंह अवतार, बाराहमिहिर अवतार) । प्राचीन शास्त्रीय श्राद्ध कर्मकाण्ड में अपने पुरखों को श्रद्धांजली देते हुए स्वान (कुत्ता), कौआ, गाय आदि पशुओं को प्रसाद खिलाने की परम्परा हैं। उक्त विवेचन प्राचीन परम्पराओं को प्रशस्ति मात्र नहीं है, अपितु उनके माध्यम से मनुष्य को प्रकृति से जोड़ने, उसका आभारी बने रहने व उसे अपनी जीवनचर्या का अभिन्न अंग बनाने की उस भावना को तलाशने का प्रयास किया गया है, जिसने सदियों तक पूर्वी संस्कृतियों को पर्यावरण संरक्षण ढाल के रूप में विकसित किया और ऐसी जीवन शैली के विकास में सफलता पाई, जो आज तक पर्यावरण प्रदूषण की अवरोधक व पर्यावरण परिशुद्धि की साधक बनी रही।

2.4 एक 'शिव', प्राकृतिक उपादान अनेक ('Lord Shiva' The Symbol of Natural Cosmos)

भारतीय चिन्तन में 'शिव' का एक ऐसे आराध्य देव के रूप में चित्रण हुआ है, जो प्रकृति व सृष्टि के कल्याण हेतु गरल या विष पान करते हैं, जो समाधिस्थ या संतुलित रहते हैं, प्रलय या सृष्टि के संहारक भी माने जाते हैं । शिव के स्वरूप की भारतीय कला और साहित्य में जो अभिव्यंजना मिलती है, उसमें पर्यावरण और प्रकृति की अनोखी अभिव्यक्ति हुई है, यथा-

(1) शिव की जटाओं चन्द्र और गंगा जल तत्व और उसकी चन्द्रमा की कलाओं से संयुति दर्शाता है, (2) विष में नील कंठ और सर्प मालाए मानव कल्याण में कटु उपापों को अभिशंसा करते हैं । साथ ही विषैले जीवों की महत्ता ज्ञापित करते हैं, (3) शिष का अर्धनारीश्वर स्वरूप स्त्री - पुरुष, शिव-शक्ति या प्रकृति और पुरुष की एक दूसरे के प्रति पूरकता का प्रतीक है। यही सम्पूर्ण सृष्टि का उद्भवन और सर्वोच्च शक्ति का स्रोत है, (4) शिव नन्दी गौ-वंश की माहत्ता ज्ञापित करता है. (5) हिम- आच्छादित शुभ्र हिमालय शिखर पर शिव-वास का चित्रण प्राकृतिक शुद्धता का प्रदर्शक है. (6) शिव-डमरू के स्वर प्राकृतिक नाद को स्वरों से मिलते हैं, तथा (7) शिव का प्रलयंकारी रूप सृष्टि का संतुलन भंग होने पर विनाश का संकेत देता है।

इस प्रकार 'शिव रूप' में प्रकृति, पर्यावरण, पारिस्थितिकी के शक्ति तन्त्र के साथ भक्ति, आस्था और श्रद्धा जोड़कर लोक-मानस में प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया पर्यावरण शिक्षा का एक अनौपचारिक और संस्थाई प्रयोग माना जा सकता है ।

कुछ वैदिक ऋचाएँ एवं आप्त वाक्यों ने भी पर्यावरण संरक्षण की परम्परा को सुदृढ़ किया है, जैसे अथर्ववेद में पृथ्वी को माता और मनुष्य को उसकी संतान के रूप में स्थापित किया है और संतान का दायित्व होता है-माँ को सेवा, सुरक्षा, सम्मान व देखरेख। रियो 'पृथ्वी सम्मेलन' की आधारशिला है यह श्लोक--

"माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या "

-अथर्ववेद 12/1/12

यजुर्वेद में मनुष्य को अपनी लालसाएँ सीमित करते हुए कामना की गई है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ही अंश (हिस्से) के उपयोग तक सीमित रहे। किसी अन्य के हिस्से को हड़प लेने या उपयोग करने की लालसा को त्यागे।ईश्वर की सभी में और सभी जगह व्याप्ति है, के उपयोग तक सीमित रखें। , अर्थात हम अपना स्वामित्व न बदा कर इस जगत् में उपभोग पर नियंत्रण करें।

"ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वित् धनम्॥"

-यजुर्वेद,40/11

2.4 वर्तमान पर्यावरण परिदृश्य एवं संस्कृति (Present Environment Scenereo and Cultural)

पर्यावरण जैसे वैज्ञानिक विषय की चर्चा में उक्त धर्म शास्त्रीय सूर वस्तुतः इसलिये दिये गये हैं कि शास्त्रीय सूत्र हैं। जब हम किसी विषय को जनसामान्य के व्यवहार का अंग बना पाते हैं, तभी उसके व्यापक परिणाम सामने ला सकते है। पर्यावरण शिक्षा का क्षेत्र विद्यालय, महाविद्यालयों तक सीमित नहीं, अपितु आम जनता तक व्याप्त है। इसका शिक्षा में इस दृष्टि से समावेशन आवश्यक है कि यह वर्तमान और भावों पीढ़ी को पर्यावरण के सांस्कृतिक अभिप्रेतों (Cultural Implications) को समझने, इसके औपचारिक- अनौपचारिक माध्यमों को सीखने और परिवर्तन की गति के सन्दर्भ में उसमें सोच या मानसिकता का विकास करने में पहल करे एवं वर्तमान राजनैतिक, आर्थिक, सत्ता व कानूनी दावपेचों में उलझे विश्व को विनाश के कार पर ले जाने वाली ताकतों को पहिचाने और नाकाम करने की चेतना विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सके।

आधुनिक विकास प्रतिमान का विद्रूप पक्ष: विकसित देशों ने जो उपभोक्तावादी विकास प्रतिमान दिया है, उसे बदलने का समय आ गया है प्राकृतिक संसाधनों के असीमित दोहन से उत्पन्न पर्यावरण असंतुलन को दूर करने के लिये पुनः विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में समाधान सोचना अपरिहार्य हो गया है और पृथ्वी सम्मेलन के अवसर पर उजागर किये गये निम्न तथ्य ध्यान देने योग्य हैं, जो आधुनिक विकास का विष पक्ष स्पष्ट करते हैं। वर्तमान पर्यावरण संकट मे मूल में विकसित देशों का यही असंयत उपभोक्तावाद है।

(1) विश्व के सर्वाधिक कार्बन उत्सर्जित करने वाले विकसित देशों की जैव विविधता के संरक्षित करने में भूमिका नगण्य है. (2) संयुक्त राज्य अमेरिका 22 प्रतिशत प्रदूषक कार्बन-डाई-ऑक्साइड (Emssion) करता है, जो समस्त विश्व की 1/5 भाग है, (3) जापान कुल विश्व द्वारा किये कार्बन-डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन का 3.2 प्रतिशत भाग अकेता उत्सर्जित करता है, (4) वातावरण में प्राकृतिक रूप से उपलभ्य क्लोरोन के स्तर में जर्मनी द्वारा 5 गुनी अधिक स्त्री गो का है, जिसने अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन परत में 50 प्रतिशत तक छिद्ण (मौसमी के अनुसार) तो जाता है ।विश्व के अनेक छोरों पर ओजोन का क्षरण 17 प्रतिशत तक हो चुका हैं, तथा (5) सात बढ़े देश (जो-7) विश्व को कुल प्रदुपक गैसों का 62 प्रतिशत उत्सर्जन करते हैं।

: -रियो पृथ्वी सम्मेलन, 1992

क्लोरो-फ्लोरो कार्बन उत्पाद कुल विश्व के ग्लोबल वार्मिंग में 15 प्रतिशत से 20 प्रतिशत का योगदान देते हैं। यही ग्रीन-हाउस (Green House) प्रभावों के लिये उत्तरदायी है। पृथ्यो के तापमान में निरन्तर वृद्धि चिन्ता का विषय है। विगत् 50 वर्षों में पृथ्वी का तापमान 01 सैल्सियस बढ़ चुका है। यदि यह वृद्धि 35 सैल्सियस तक पहुँच जाती है, तो आर्कटिक तथा अंटार्कटिक के विशाल हिमखण्ड पिघल कर समुद्र के जत स्तर में 12 से.मो. 15 मोटर तक वृद्धि कर सकते हैं और ऐसी स्थिति में प्रलय की कल्पना साकार हो चुकी होगी। डर है कि फ्लोरीड़ा, टोक्यो, ओसाका, स्टॉकहोम, ग्लास्गो, कोलकाता, कोपेनहेगन जैसे नगर जल मग्न हो जाएंगे। बांगलादेश और मालद्वीप का तो आस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। मनुष्य के अविवेक ने आज विश्व को प्रलय के कगार
2.5 पर्यावरण और वन्य जीव व्यापार (Environment and Wild Life Trado) मानव ने पर्यावरण के प्राकृतिक स्वरूप को अपनी धरोहर मान कर उसका मनमाने रूप में उपभोग करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझा है। आज वन्य जीवों और वनस्पतियों का व्यापार ब्रे पैमाने पर मुनाफे का सौदा बना हुआ है। एक दक्षिण अमेरिकी फर के कोट की कीमत जर्मनी में 40,000 डॉलर अधिक मिलती है। एक अमोजोनिपन तोता 5,000 डॉलर में विक्रेता है और दरियाई घोड़े के साँग की कीमत सोने के तोल से अधिक हैं जुलाई, 1975 में विलुप्त होती पा प्रजातियों के बजाय के लिये 'साइट्स' नामक संगठन, जिसका पूरा नाम Convention of International Trade in Endangered Species of Wild Fauna and Flora है, का गठन किया, जिसके 143 सदस्य हैं। अन्तरा्ट्रीय स्तर पर 200 से अधिक दुर्लभ प्रजातियों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार 'साइट्स द्वारा प्रतिबन्धित है ।इससे पूर्व खुलेआम कीडों, जोव-जंतुओं व वस्पतियों का निर्मम व्यापार पूरे जोर पर था । नीचे दिये गये कुछ नयों पान के, में चौकाने वाले हैं ।
1600 ह. के आकार के आधार पर विश्व में पशु-पक्षियों की 3,200 प्रजातियाँ चा, जिनमें से 130 तो पूरी तरह विलुप्त हो चुकी हैं और 240 विलुप्त के कगार पर हैं।

भारत में 50 वर्ष पूर्व तक 40,000 टाइगर थे, आज इनकी गणना कुछ हजार हो रह गई है।

पाँचवें दशक तक भारत ने प्रतिवर्ष संयुक्त राज्य अमेरिका को 2,00,000 बन्दर निर्यात किये। 1978 ई. में यह व्यापार प्रतिबंधित होने तक क्रम: 1974 ई. में 30,000, 1975 ई. में 20,000 बन्दर बेचे गये।

1957 ई. में मद्रास की एक फर्म ने प्रतिदिन औसतन 5,000 से 10,000 तक सर्प की खाल निर्यात की। 1976 ई. में यह व्यापार बन्द हुआ।

81967-43 में भारतीय हारा 5.47,000 चिड़ियों 31,000 पशुओं और 42,000 सरिसर्प जन्तुओं का 1.9 मि. डॉलर का व्यापार किया। १72 में 1975 1 के बीच पाइलण्ड से 19,000 मकॉक एंव गिब्बन प्रजाति के बन्दर अमेरिका को निर्यात किये। 1976 ई. में इंडोनेशिया ने 2,70,000 मॉनीटर 71,000 कहां के कवक का निर्यात किया।

1970 में 1976 ई के मध्य भारत द्वारा 1850000 पक्षियों का निर्यात किया गया।

1975 ई. में अकेले संयुक्त राज्य आयात किये गये।

अमेरिका में 327 टन मेढ़क शिक्षा व शोध कार्यो के लिये प्रतिदिन 1976 ई. में प्रतिदिन 62 टन मेंढक भोजन में चट करने हेतु अकेले स्विट्जरलैण्ड द्वारा आयात किये छिपकलियों, 28,000 मगरमच्छों, 3,50,000 सो,

उक्त कुछ तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिये किस प्रकार शेष जीव-जन्तुओं का निर्मम संहार किया है। यदि यह गति नियंत्रित नहीं होती है, तो प्रकृति में उपलब्ध विविध जीव-जन्तुओं का सुन्दर संसार उजड़ने में अधिक समय नहीं लगेगा। इस क्षति से समस्त पारिस्थितिकी में असंतुलन उत्पन्न होगा, जो मानव के अस्तित्व के लिये भी खतरा उत्पन्न करेगा।
यदपि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण एवं जैविक विविधता संरक्षण हेतु कानून बनाये गये हैं, किन्तु गैर-कानूनी व्यापार के हाथ लम्बे हैं, यह अभी भी जारो है।

2. 6 जैव-विविधता और पारिस्थितिकी उपनिवेशवाद (Biological Diversity and Eco-Imperialism)
1992 में पृथ्वी सम्मेलन में जैव निति12,9, जैव-विविधता और पारिस्थितिक उपनिवेशवाद (Biological Diversity and Eco-Imperialism) 1992 ई. के पृथ्वी सम्मेलन में जैव-विविधता पर कई परिचर्चाओं के दौरान विकसित देशों को उपनिवेशवादी दादागिरी खुल कर सामने आ गई। समय राष्ट्र जैव-तकनीकी (Bio-Technology) में तो आगे हैं, पर जैव-विविध- संसाधन' कोष देशों के पास अधिक है। ऐसे में विकसित देश विकाससशील देशों के वनों और जैव विविधता संसाधनों पर उनको संप्रभुता को नकारते हुए इसे 'सभी की सम्पत्ति' पोषित करने पर तुले रहे भाविष्य में जैव-विविधता समृद्धि के बहुत बड़े संसाधन के रूप में स्थापित हो रही है। यूथोपियन 'जौ' की केवल एक 'जीन' 160 मि.यू.एस. डॉलर बचा रही है। टर्की की जंगली गेहूं से ली गई जीन' अमरीकी हाईविड केन गेंहूँ की निरोधक कम खाने में प्रयोग की गई, जिससे उन्हें रोग मुक्त फसल प्राप्त कर मिलियन डॉलर बचाने में कामयाबी मिली ।इस प्रकार विकसित देश की समृद्धि में बायो-तकनीकी का प्रयोग बहुतायत मात्रा में कर रहे हैं, पर विकासशील देशों को उनकी उस जैव-विविधता का लाभ नहीं देना चाहते, जो यहाँ की जनसामान्य की परम्पराओं और प्रणालियों से अभी तक प्रचुर मात्रा में संरक्षित हैं।

इसी प्रकार विश्व प्रदूषण वृद्धि में विकसित जी-07 देशों का बहुत बड़ा योगदान है। ये देश विश्व की कुल प्रदूषक गैसों का लगभग 62 प्रतिशत उत्सर्जित करते हैं, जयकि गरीब व विकासशील देशों को उनसे होने वाले नुकसान की कोई क्षतिपूर्ति भी नहीं करते हैं। पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने विश्व पर्यावरण सम्मेलन में यह मांग की कि, विकासशील देशों को विकसित देशों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण को क्षतिपूर्ति दी जाए। विकसित देशों ने यह मांग स्वीकार नहीं की। पर्यावरण विद् मानते हैं कि तीसरा विश्व युद्ध यदि होगा, तो उसका कारण जल ही। जल संरक्षण के पारम्पारिक स्रोत समाप्त हो रहे हैं और नये स्रोतों का विकास किये बिना जल का असीमित उपयोग बढ़ रहा है। पारम्पारिक रूप से जीवन की आत्मा को फेन्द्र रही नदियों में शहरी और औक प्रदूषणपुका जत-मल छोड़ने से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को और भी गहरा दिया है।

1980 ई. से विकसित देशों ने अपने औद्योगिक अपशिष्टों को विकासशील देशों में बेचने का व्यापार (Dumping of Waste Trade) प्रारम्भ कर नई डॉलर कूटनीति शुरू की है। यह इन गरीब देशों में भयंकर आपदाएं

उत्पन्न कर रही है। भारत में अभी जीवित बमों के शैल औद्योगिक कवाड़ के साथ येचे गये, जिनोंने अनेक कारखानों में तबाही का छतरा उत्पन्न कर दिया।

जैसा कि उक्त विवरण में स्पष्ट हुआ है। विकसित जी-07 राष्ट्र विकासशील जी-77 राष्ट्री तुलना में प्रदूषण की समस्या को गम्भीर बनाने के लिए अधिक उत्तरदायी है।

विश्व में CFC का प्रयोग (कुल प्रयोग का प्रतिशत 1,036 मि. किलो में से)

शेष विश्व 14.30%

1.80% =भारत व चीन

14.10%=रूस

40.90%=अन्य यूरोपीय देशों

28.90%=अमेरिका

ओजोन की परत में छिद्र करने वाले रसायनों (Ozone Depleting Compounds) के उपयोग के प्रश्न को लिया जाए, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका सम्पूर्ण विश्व के कुल 1,036 मिलियन किलो क्लोरो फ्लोरो कार्बन द्रव्यों (Chloro Figaro Carbons) (जो कि शीतलीकरण द्रव्य हैं, जिन्हें संक्षेप में CFLS कहते हैं) का अकेला उपयोग करता दूसरा स्थान रूस का है (14.0 प्रतिशत) व तीसरे स्तर पर अन्य विकसित देश (40.9 प्रतिशत) हैं व शेष विश्व 14.3 भी है।
प्रतिशत CFLs का उपभोग कर रहे हैं। गौरतलब है कि भारत और चीन दोनों विश्व का मात्र 1.8 प्रतिशत क्लोरो फ्लोरो कार्बन इस्तेमाल करते हैं, जबकि इनकी आबादी विश्व में सर्वाधिक सघन है। यहाँ यह बताना उपयुक्त होगा कि CFLS और हैलांन (Halons) मानव निर्मित क्लोरीन युक्त व ब्रोमीन युक्त योगिक हैं। ये ओजोन की परत के लिये सबसे बड़ा खतरा है। यह सभी जनते हैं कि ओजोन परतें सूर्य की पराबैंगनी किरणों से पृथ्वी के जीव-जन्तुओं व वनस्पति की रक्षा करती है और इनमें क्षरण या छिद्रण होने से समस्त पारिस्थितिकी व्यवस्था (Eco-System) को भारी सती पहुंचेगी। रोजमर्रा के तकनीकी संसाधनों के उपभोग से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने हेतु निम्न तालिका के कुछ तथ्यों पर भी ध्यान दें ,

पर्यावरण संबंधी कुछ ध्यानाकर्षक तथ्य

एक सामान्य व्यक्ति को दिन में 21600 से 23250 नार श्याम सेने के लिए 1400 लीटर ताजाय ऑक्सीजन युक्त शुद्ध यायु चाहिये।

1,000 कि.मी. एक कार चलाने में कितनी ऑक्सीजन चाहिये उतनी औक्सीजन एक व्यक्ति को एक वर्ष तक सांस लेने के लिए प्राप्त है।

एक व्यक्ति द्वारा श्वास लेफर गोही गई कॉर्न-ऑक्साइड (CO.) शुद्ध करने के लिये 25 वर्ग फुट रियाली आवश्यक है।

एक बस को चालू करने में जितनों ऑक्सीजन चाहिये, उतनी 1,135 व्यक्तियों को 11 मिनट तक सांस लेने के लिये पर्याप्त फाल-कारखानों से प्रतिवर्ष हमारे देश में 2 करोड़ 60 स दूषित पदार्थ वायु मण्डल में मिलते हैं।

2009 ई. में भारत में जल की उपलब्धता 1100 वार्षिक प्रतिवर्ष है, जो 2015 ई. में 800 क्यूबिक रह आएगी देश 'जल संकटग्रस्त हो जाएगा।

2.7जनसंख्या वृद्धि, आव्रजन, पर्यटन और पर्यावरण (Population Growth, Migration, Tourism and Environment)

जनसंख्या वृद्धि से जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion) का रूप से बुको है एक अनुमानानुसार वि संखा आज से लगभग 2,000 वर्ष पूर्ण 300 मि से भी कम थी। 1850 तक यह 1,000 मिलियन (01 चिलियन) थ, 75 अ्षों में बढ़ कर यह 2,000 मिलियन (02 बिलियन) हुई. जो अगले 35 बर्षों में (925 से 1960 ई. तक) 3000 मिलियन (o3 मिलियन) हाई, 1960 से 1975 ई. के 15-व्षों में 4,000 मिलियन (०. मिलियन) और 1975 1965 के 10 वर्षों में गृह 5,000 मिलियन (०5 मिलियन हो गई। स 200० में विव उनसंखयायो, 75 वर्षों में बढ़ कर यह 2,000 मिलियन (02 बिलियन) तुई, त अगले 35 क्या म 9501) 3,000 मिलियन (03 विलयन) हुई 1960 से 1975 के 15 वर्षों में 4,000 मिलियन (04 पिलियन) और 1975 से 1985 ई. तक के मात्र 10 वर्षों में यह 5000 मिलियन (05 बिलियन) हो गई। सन् 2000 में विश्व जनसंख्या 6,055 मिलियन (6.065 मिलियन) रही। भारत की जनसंख्या तो एक अरब को पार (2007 में 1,027.0) कर ही चुकी है। यह विश्व की कुल जनसंख्या का 16.87 प्रतिशत है, जबकि हमारे देश का क्षेत्रफल कल विश्य क्षेत्रफल का मात्र 2A प्रतिशत हो है। पिछले दशक के दस वर्षों में 18 करोड़ की वृद्धि चिन्ता का विषय है। आवजन और पर्यटकों की संख्या से मिलकर जनसंख्या का भार पर्यावरण पर निरन्तर बढ़ता जा रहा है। राद्ध यापु, जल, भोजन, आवास और रोजगार का परम्परागत स्वरुप तो विपटित हो गया है। मानव निर्मित सांस्कृतिक और पारिवारिक ढांचा आज चरमरा गया है। परिणाम टिकाऊ जीवनशैली में संयुक्त परिवार, कुटीर उद्योग, स्वदेशी खेती और संयमित जीवन मूल्यों को आज छोड़ देने से समस्त संतुलन डगमगा गये है पहले पर्यटन का स्वरुप आध्यात्मिक था और परिवार की आधारशिला शारीरिक सम्बन्धों पर ही नहीं, कत्व्र्य पूर्ति पर आधारित थी। आज इन कारकों के अध्ययन और भी आवश्यक हो गये हैं। सभी संस्कृतियों की आज महत्ता इसीलिए पुनर्स्थापित होनी आवश्यक है कि उनमें मानव जाति के चिरस्थाई विकास के बीज मंत्र निहित हैं।

निष्कर्ष: पर्यावरण प्रदूषण भौतिकवादी विकास से उत्पन्न परिस्थितियों का ही परिणाम नहीं है, यह मानव को मानसिक विकृति का भी परिणाम है, अत: पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य भी इस विकृति के स्थान पर स्वस्थ मानसिकता की आधारशिला रखना है।

.2.7 पर्यावरण सम्मोषी सांस्कृतिक मूल्य और शिक्षा (Cultural values and Education)

"Value Education has a profound positive content based on our heritage, national and universal goals and perceptions."

NEP. 1985,P-22

अर्थात मूल्य शिक्षा की विषयवस्तु हमारी विरासत राष्ट्रीप और वैश्विक लक्ष्यों तथा प्रज्ञानों से गहराई के साथ सकरात्मकता पर आधारित होगी। नई शिक्षा नीति, 1986

भारतीय परम्परा ऐसे जीवन मूल्यों पर आधारित रही है, जो पर्यावरण सम्पोषक हैं। आज ऐसे जीवन मूल्य जो पर्यावरण के सम्पोषक थे, क्षीण हो चुके हैं। पर्यावरण शिक्षा व संचेतना कार्यक्रमों द्वारा इन मूल्यों को सहेजने का प्रयास आवश्यक है। सांस्कृतिक मूल्य आज की उक्त समस्याओं की परिस्थितियों को समाप्त तो नहीं कर सकते. किन्तु उनके नियंत्रण में अवश्य प्रभावी भूमिका अदा कर सकते हैं। कुछ ऐसे हो जीवन मूल्य नीचे दिये जा रहे हैं, आप इस सूची को देखें और आगे इनमें अपने अनुभवों के आधार पर और ऐसे ही मूल्यों का समावेषण करें, जो पर्यावरण संरक्षण में सहायक हो-

(1) भोगवाद के स्थान पर इन्द्रिय-निग्रह, संयम, (2) व्यक्तिवादी स्वार्थपरता के स्थान पर सेवा, (3) पुणे, स्पर्धा के स्थान पर जीव पर, दया, अहिंसा, (4) भौतिक संग्रह के स्थान पर अपरिग्रह, (5) विभेदीकरण के स्थान पर एकत्व, (6) कर्मकाण्डी आध्यात्म के स्थान पर आत्मा की पवित्रता व शुद्धता, (7) कृत्रिमता के स्थान पर प्राकृतिक सहजता, तथा (8) अधिकारों के स्थान पा कर्तव्यनिष्ठा । यह सूची बहुत विस्तृत हो सकती है, यह तो संकेत मात्र है। प्रत्येक शिक्षक कर को अपने-अपने हिस्से के मूल्यों का नई परिस्थितियों में इस प्रकार सूजन और संरक्षण करना अपरितार्प होगा कि अपने स्वर्ग के और मानव प्रजाति के साथ-साथ इस विश्व के अस्तित्व को अक्षुण्य रखने अपना अभाष्ट दे से पही नहीं, आज ऐसे जीवन मूल्य जो पर्यावरण है। प्रत्येक शिक्षक कर को अपने-अपने हिस्से के मूल्यों का नई परिस्थितियों में इस प्रकार सूजन और संरक्षण करना अपरितार्प होगा कि अपने स्वर्ग के और मानव प्रजाति के साथ-साथ इस विश्व के अस्तित्व को अक्षुण्य रखने अपना अभाष्ट दे से पही नहीं,अपनाने का संदेश दे सकें, ताकि वे अपनी शुद्र, स्वार्थी, भौतिकवादी व भोगवादी संस्कृति पर पुनर्षिचार करने की प्रेरणा लें। अपनी सांस्कृतिक विरासत में प्रेम और मित्रता के संदेश विखरे हैं यजुर्वेद में कहा गया है

"मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षु सर्वाणि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुपा समीक्षा महे॥"

-यजुर्वेद 36-18

अर्थात् सब जीव मेरी ओर मित्रता की दृष्टि से देखें, मेरी सभी वस्तुओं की ओर मित्रयत् दृष्ट रहे, हम सभी एक-दूसरे को और मित्रता से देखें।

सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
"खामेमि मिट्टी व सव्य भरसक, वैरं मज्झं न केणई।"

-जिन वाणी अर्थात् सभी जीवों के प्रति क्षमा भाव रखना है, सभी मुझे क्षमा करें सभी प्रणीमात्र के लिये मित्रता के भाव रखता हूँ, मुझे किसी से बैर नहीं। अरण्यों की गोद और इन्द्रिय पुष्ट, शतायु जीवन :

भारतीय संस्कृति के ज्ञान और जीवन की अखंडता की दृष्टि में पर्यावरण भी रचा-पचा रहा है। वह कोई पृषक जान प्रखण्ड या अलग-अलग बुद्धि विलास का विषय कभी नहीं रहा, अपितु जीवनचर्या का एक सरेकितपर्यावरण शिक्षण आर आसन्न पक्ष बना रहा। प्राचीन संस्कृति की आश्रम व्यवस्था 'आरण्यको' या 'यनों से प्रारम्भ होती है, जो मूल्य 25 वर्षों तक प्रकृति के सानिध्य में पनपे गुरुकुलों, मठों व आश्रमों में शिक्षार्थी अपने तन मन, बुद्धि और आत्मा का निर्माण करते थे। यवय 'बानप्रस्य (5 वर्ष से 75 वर्ष की आयु तक) और 'संन्यास म के (76 वर्ष से 100 वर्ष की आम तक) पढ़ाप क्क आरण्यकों के आगोश में हो पूरी होती थी। यह इन्द्रिय मुष्ट शतायु जीवन भीतिक, दैहिक, सामाजिक और मानसिक प्रदूषण के टिकाक या स्थाई निवारण का समर्पित था। य क कि गृहस्थ आश्रम (26-30) में भी संयमित अभिभाकात्य' और 'कर्तव्य परापणता' के साथ आनंदित आन की संकल्पना निहित है। पर्यावरण वैदिक प्राचामों के स्तन के रूप में पूज्य हैं, दिनचर्या का प्रातः स्मरणीय

देव है।

इसी दिशा में पर्यावरण शिक्षा को सांस्कृतिक सुंदर से जोड़ते हुए संस्कृति-सम्वेदी स्वरूप देना होगा ताकि देश की विन अतत पनी भाषो पौड़ी को जिस प्रकार को संस्कृति हस्तांतरित करती है, वह तकनीकी के विस्तार मसाप पिलुप्त न हो, अपनी शिक्षा द्वारा उसकी सामंजस्यपूर्ण अन्तःचेतना को सम्पूर्ण विस्तार मिले। पर्यावरण को संस्कृति मांगे की शिक्षा पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विशेष प्रतिबल दिया जाना चाहिए। नई शिक्षा नीति, 1986 द्वारा 'मूल्यों' को शिक्षा में विशिष्ट स्थान दिया गया है। शिक्षा क्रम में पर्यावरण सम्पोषित सांस्कृतिक मूल्यों का गहराई से समावेषण हो। वस्तुतः संस्कृति स्वयं मूल्यों का एक गुलदस्ता है। शिक्षक प्रशिक्षण

पाठ्यक्रमों में प्राचीन भारत से लेकर अर्वाचीन भारत की सांस्कृतिक बटेर गये पर्यावरण सम्पर्क यात्रा में मूल्यों का पुनः अन्वेषण हो, उसके सकारात्मक पक्षों को वर्तमान सन्दर्भों में व्याख्यायित किया जाए एवं शिक्षा द्वारा उनके आग्रह व हस्तांतरण की प्रक्रिया निरंतर अपनाई जाती रहे।